International Journal of Home Science 2021; 7(1): 39-44

ISSN: 2395-7476
IJHS 2021; 7(3): 39-44
© 2021 IJHS
www.homesciencejournal.com
Received: 28-05-2021
Accepted: 29-08-2021

रूबी कुमारी साह
शोधार्थी विश्वविद्यालय गृह-विज्ञान विभाग, ल.ना.मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
रूबी कुमारी साह
शोधार्थी विश्वविद्यालय गृह-विज्ञान विभाग, ल.ना.मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा, बिहार, भारत

बाल विकास की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

रूबी कुमारी साह

सारांश
एक ही अभिभावक के दो बच्चों में शारीरिक, सामाजिक, संवेगात्मक, भावात्मक/भावनात्मक भाषायी एवं ज्ञानात्मक क्षमता में अंतर होता है क्योकि ये सब बालक/बालिका के बचपन के अलग-अलग अनुभवों से प्रभावित होते हैं। बाल-विकास का संबंध बालक/बालिका के व्यवहार में समय के साथ होने वाले परिवर्तनों से है तथा ये परिवर्तन क्यों और कैसे होते हैं, बाल विकास का संबंध बच्चों की उस वृद्धि और व्यवहार से है जिसका प्रभाव उनके सम्पूर्ण जीवन काल पर पड़ता है। विकास शब्द का प्रयोग व्यक्ति की उन शारीरिक और व्यावहारिक विशेषताओं में परिवर्तन के लिए किया जाता है जो कि क्रमानुसार उभरते है जिसमें निरंतर प्रगति होती है। क्रम के प्रत्येक चरण पूर्व चरण पर आधारित होता है। शरीर के आकार में बढ़ने को वृद्धि कहा जाता है। जो मापा जा सकता है वृद्धि मात्रात्मक होती है एवं विकास गुणात्मक।

प्रस्तावना
सभी बच्चे विकास के दौरान भाषा बोलना सीख जाते हैं। भारत में रहने वाली बालिका अपने क्षेत्र की कोई भाषाएँ सीखती है और अन्य देशों में रहने वाली बच्ची वहाँ की भाषा। पाँच वर्ष का एक बालक स्कूल जाने लगता है उसी उम्र का दूसरा बालक दूध दोहने तथा खेती-बाड़ी में अपने पिता की मदद करता है और पाँच वर्षीय अन्य बालक सड़कों पर अखबार बेचता है। कुछ कारक जो कि बचपन के अनुभवों को प्रभावित करते हैं वे इस प्रकार हैं- परिवार में सदस्यों की संख्या और आर्थिक स्थिति परिवार तथा समुदाय के रीति-रिवाज, परम्पराएँ उनके नैतिक मूल्य और विश्वास, आवास, जैसे-गाँव शहर या जनजातीय क्षेत्र पहाड़ समतल रेगिस्तान अथवा तटवर्ती इलाका। जिस प्रकार के समाज में हम रहते हैं, वह हमारे बचपन को प्रभावित करता है।

यद्यपि हम व्यापक रूप में भारतीय संस्कृति और उनके नैतिक मूल्यों की बात कर सकते हैं, फिर भी हमारे देश में एक समूह के रीति-रिवाजों, विश्वासों और रहन-सहन के तरीकों में दूसरे समूह से भिन्नताएं हैं। हम एक समरूपी भारतीय संस्कृति की बात नहीं कर सकते। इसका कारण है समूहों के आर्थिक स्तर, शिक्षा, व्यवसाय, क्षेत्र, भाषा और धर्म में एक-दूसरे से भिन्नता। प्रत्येक समूह का बच्चा जो सीखता व अनुभव करता है वह दूसरे समूह के बच्चे से भिन्न होता है। अब हम उन सभी कारकों के बारे में पढ़ेंगे जिनसे बच्चों के अनुभवों में विविधताएं आती हैं।

(क) लिंग– बच्चे का लड़का या लड़की होना एक महत्वपूर्ण कारक है जो कि उसके अनुभव निर्धारित करता है। पालन-पोषण किस प्रकार हुआ, बच्चे को कैसे अवसर और सुविधाएँ मिलीं और अन्य लोगों का उसके साथ परस्पर संबंध कैसा था, यह सभी बातें अधिकांशतः बच्चे के लिंग से निर्धारित होती हैं। एक स्पष्ट भिन्नता जो हमें दिखाई देती हैं वह है उनका पहनावा। परन्तु इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली भिन्नता है- लोगों की लड़कों और लड़कियों के प्रति भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियाँ। इसमें कोई संदेह नहीं है कि हमारे देश के अधिकांश भागों में लड़कों को लड़कियों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है। लड़के का जन्म खुशी का मौका होता है जबकि कई परिवारों में लड़की के जन्म पर माता-पिता रो पड़ते हैं।

कई परिवारों में लड़कियों को कम प्यार मिलता है, उनकी परवाह भी कम की जाती है और अपेक्षाकृत उनकी देखभाल भी उचित नहीं होती तथा उन्हें भोजन, वस्त्र और संसाधन नहीं दिया जाता जबकि लड़के की बीमारी पर तुरंत ध्यान दिया जाता है। लड़कियों की अपेक्षा लड़कों के लिए शिक्षा आवश्यक समझी जाती है। अधिकांश माता-पिता जहाँ एक ओर लड़के की पढ़ाई के लिए संपत्ति बेच देते हैं, दूसरी ओर इसी संपत्ति को वह लड़की के विवाह पर लगा देते हैं।

अधिकांश मामलों में लड़कियों के लिए आचार-संहिता कहीं अधिक सख्त है। लड़कों को दृढ़, स्वतंत्र और महत्वाकांक्षी बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है और लड़कियों से अपेक्षा की जाती है कि वे घर के कामकाज में निपुण हों, आज्ञाकारी हों तथा अन्य लोगों का आदर करें। स्वयं निर्णय लेने की योग्यता को लड़कियों में बढ़ावा नहीं दिया जाता और यदि लड़कियां ज्यादा बहस करती हैं, खुलकर हंसती हैं या जोर से बोलती हैं तो उनको डांट दिया जाता है। लड़की के साथ ऐसा बर्ताव किया जाता है जैसे कि वह अपने घर में स्थायी सदस्य न होकर अस्थायी सदस्य हो। हर समय उसको ससुराल के लिए तैयार करने के नज़रिए से शिक्षण दिया जाता है। तथापि, उपर्युक्त चर्चा से केवल सामान्य प्रवृत्ति का पता चलता है। सभी लड़कियों के साथ उपेक्षा का व्यवहार नहीं होता। लड़कियों के प्रति कैसा व्यवहार होगा यह काफी हद तक उसके परिवार के सदस्यों पर निर्भर करता है। जिस परिवार में लड़के-लड़कियों में भेद नहीं होता वहाँ दोनों से समान व्यवहार किया जाता है। परिवार का आर्थिक सामर्थ्य एक अन्य कारक है जो लड़के और लड़की के प्रति माता-पिता के व्यवहार को प्रभावित करता है। इसी प्रकार सामाजिक वर्ग से भी बच्चों के अनुभव में भिन्नता आती है।

(ख) सामाजिक वर्ग– व्यक्ति किस सामाजिक वर्ग का है इसका निर्धारण उसके परिवार की शिक्षा, व्यवसाय व आय द्वारा होता है। उच्च सामाजिक वर्ग के लोगों की आय अधिक होती है और वह बड़े मकानों में रहते हैं। कम आमदनी, गरीबी, निम्न शैक्षिक स्तर, रहने के लिए छोटे मकान आदि निम्न सामाजिक वर्ग से संबंधित होते हैं। धनी और निर्धन लोगों के बीच सामाजिक-आर्थिक दर्जों के कई स्तर हैं। सामाजिक वर्ग यह निर्धारित करता है कि बालिका को किस प्रकार के अवसर और सुविधाएं उपलब्ध होंगी। उसे पेट भर खाना, पहनने को कपड़ा और शिक्षा प्राप्त होगी या नहीं, बिजली-पानी की सुविधा उपलब्ध होगी या नहीं और रहने के लिए कैसी जगह मिलेगी, ये सभी उसके परिवार के सामाजिक आर्थिक दर्जे पर निर्भर करता है।

1. निम्न सामाजिक वर्ग के परिवार– एक निम्न सामाजिक वर्ग के परिवार के पास इतना पैसा नहीं होता कि वे अपनी सभी मूल आवश्यकताएं पूरी कर सकें। बच्चों को पर्याप्त भोजन और पहनने को कपड़े नहीं मिलते। सीमित संसाधनों के कारण लड़कियों को अपेक्षाकृत और भी कम हिस्सा मिलता है। निम्न वर्गीय परिवारों के पास घर के नाम पर एक या दो कमरे होते हैं जिनमें पूरा परिवार रहता है। बच्चे भी इसी भीड़ भरे माहौल में रहते हैं। झुग्गी-झोपड़ी और भीड़भाड़ वाले इलाकों में चारों ओर गंदगी और अस्वच्छता की वजह से संक्रामक रोग व बीमारियाँ हो जाती हैं। गरीब परिवार के बच्चों की कई आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो पाती। अत्यधिक गरीबी में ये सभी कठिनाइयाँ बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में बच्चों को एक बार का भोजन भी मुश्किल से नसीब हो पाता है और आश्रय न होने के कारण वे सड़कों के किनारे या रेलवे स्टेशन आदि पर ही सो जाते हैं।

गरीब परिवारों के बच्चों पर छोटी सी उम्र में ही जिम्मेदारियां आ जाती हैं। आपने देखा होगा कि चार या पांच वर्ष की लड़कियां पानी लाने, ईंधन जमा करने, खाना बनाने और छोटे-मोटे कामों में माँ की मदद करने लगती है। लड़के पिता के व्यवसाय में मदद करते हैं- वे मवेशी की निगरानी करते हैं, खेती में सहायता करते हैं और पिता के साथ नाव में जाते हैं। अगर पिता का व्यवसाय किसी कौशल से संबंधित हो जैसे- बढ़ईगिरी, कुम्हारगिरी इत्यादि तब लड़के छोटे-मोटे कामों में उनकी मदद करते हैं। घर के कामकाज में माता-पिता की मदद करने के अतिरिक्त बहुत बच्चे घर के सुरक्षित वातावरण से निकलकर पैसे

कमाने लगते हैं और परिवार की आमदनी को बढ़ाते हैं। वे घरेलू नौकर का, कारखानों में या फेरी वाले का काम करते हैं।

जब माता-पिता दोनों ही घर से बाहर काम करने जाते हैं तो छोटी लड़कियों का एक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व घर चलाना और अपने से छोटे बच्चों की देखभाल करना होता है। यदि घर में देखरेख के लिए लड़की न हो तो माँ शिशु को अपने कार्य स्थल पर अपने साथ ले जाती है। शिशु सारा दिन एक पालने में रहता है और माँ बीच-बीच में आकर उसको देखती रहती है। जब माता-पिता दोनों ही काम करते हैं तो बच्चों के साथ कम समय व्यतीत कर पाते हैं।

निम्न वर्ग की इन परिस्थितियों में शिक्षा को, विशेषतः लड़कियों की शिक्षा को बहुत कम महत्व दिया जाता है। जहाँ जीने के लिए ही संघर्ष करना पड़ता है, वहाँ माता-पिता शिक्षा को अनिवार्य कैसे समझेंगे? बच्चे या तो अभिभावकों की काम में मदद करते हैं या पैसा कमाने में जुटे रहते हैं। इसके बाबजूद भी यदि संभव होता है तो निम्न सामाजिक वर्ग के बहुत से बच्चे स्कूल जाते हैं। इस प्रकार वे काम और पढ़ाई साथ- साथ करते हैं।

उत्तरदायित्व और अभावों का सामना करने के कारण बच्चे छोटी उम्र में ही भावनात्मक रूप से परिपक्व हो जाते हैं। वे दुनियादारी समझने लगते हैं। उदाहरणतः छोटी उम्र में ही बालिका फल-सब्जी के सही दाम देना सीख जाती है और अपनी रक्षा स्वयं कर सकती है। संभव है वह दूर गाँव से रेल द्वारा शहर में काम की तलाश के लिए अकेली ही आई हो।

निम्न सामजिक वर्ग के बच्चों के लिए बाल्यावस्था जिम्मेदारी और व्यस्तताओं से भरी होती है। परंतु इन सब के बीच भी वे अपने कुछ सुखद अनुभव बटोर लेते हैं। समय-समय पर उन्हें माता-पिता से स्नेह, पोषण और प्रोत्साहन मिलता रहता है। पारिवारिक आमदनी में सहयोग देने की वजह से बच्चे की महत्ता और भी बढ़ जाती है। फिर भी ये बच्चे अच्छी आर्थिक स्थिति वाले घरों के बच्चों की तुलना में परिश्रमी एवं कठिन जिंदगी व्यतीत करते हैं।

2. मध्यम और उच्च सामाजिक वर्ग के परिवार– मध्यम और उच्च सामाजिक वर्ग के परिवारों की आर्थिक स्थिति अच्छी होती है और उन्हें मूलभूत आवश्यकताओं का अभाव नहीं होता। लड़कों और लड़कियों दोनों को ही पर्याप्त मात्रा में भोजन ओर कपड़ा मिलता है और आमतौर पर स्वास्थ्य की देखरेख में भी कोई कमी नहीं होती। अधिकांश परिवार बच्चों के लिए बाजार से खेल सामग्री, जैसे- गुड़िया, बंदूक, पहेली, खेल, ड्राइंग कापियाँ, रंग और किताब खरीद सकते हैं। आमतौर पर बच्चों को आर्थिक गतिविधियों में हिस्सा लेने की जरूरत नहीं पड़ती। उन्हें घरेलू काम में तथा छोटे बच्चों को मदद नहीं करनी पड़ती। एक संपन्न परिवार में बच्चे के पास ऐशो-आराम के अधिक साधन होते हैं। प्रायः उनके पास अधिक कपड़े होते हैं, ज्यादा महंगे खिलौने होते हैं। साथ ही साथ उन्हें अलग-अलग तरह का भोजन भी खाने के लिए मिलता है।

इन परिवारों में शिक्षा को प्राथमिक रूप से महत्वपूर्ण समझा जाता है। दूसरे अर्थों में बच्चे का एक मात्र लक्ष्य स्कूल में अच्छी तरह से पढ़ना होता है। आमतौर पर लड़कों और लड़कियों दोनों के लिए शिक्षा समान रूप से महत्वपूर्ण समझी जाती है। परन्तु, फिर भी यह देखा गया है कि लड़कों को इस मामले में प्राथमिकता दी जाती है। अच्छे स्कूल में प्रवेश पाने के लिए तीन-चार वर्ष की कोमल उम्र से ही कड़ी शिक्षा आरंभ हो जाती है। अधिकांश बच्चों का दिन स्कूल जाने, घर लौटकर स्कूल का काम करने और खेलने में बीतता है।

आदर्श रूप से शिक्षा से अपेक्षा की जाती है कि बच्चे स्वावलंबी बनें और उनके विचारों में सुस्पष्टता व दृढ़ता आए। हमारे समाज के बदलते हुए मूल्यों के साथ-साथ इन विशेषताओं को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। परन्तु लड़कियों के प्रति इस मामले में पक्षपात अब भी दिखाई देता है। हालांकि एक ओर तो लड़कियों को शिक्षा के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, दूसरी ओर अभिभावक उनसे यह अपेक्षा करते हैं कि वे उनके अधीन ही रहें। लड़कियाँ अगर ज्यादा बोलती हैं, सवाल-जबाव करती हैं तो उन्हें यह कह कर डांट दिया जाता है कि इन आदतों से उन्हें भविष्य में कठिनाई होगी।

बाल श्रम- आपने ऊपर पढ़ा कि कुछ बच्चे घर का काम करके, पारिवारिक व्यवसाय में अथवा पैसा कमाकर अभिभावकों की मदद करते हैं। जब बच्चे घर में या पारिवारिक व्यवसाय में काम करते हैं तो उनकी जरूरतों का पूरा ध्यान रखा जाता है, और उन्हें माता-पिता का स्नेह भी मिलता है। बच्चों के पास खेलने और मन बहलाने के लिए समय होता है। पारिवारिक व्यवसाय में काम का अनुभव बच्चे के लिए लाभप्रद हो सकता है और ऐसा करते हुए बच्चे कुछ ऐसे कौशल भी सीखते हैं जो कि बाद में उनको व्यवसाय चुनने में सहायक होते हैं। आर्थिक क्रियाकलाप में इस प्रकार से बच्चों का सम्मिलित होना बाल कार्य कहा जाता है जो कि बाल श्रम से भिन्न है, जिसके बारे में अब आप आगे पढ़ेंगे।

कुछ बच्चे अस्वस्थ, कठिन और शोषणकारी परिस्थितियों में काम करते हैं, जहां उन्हें कार्य के अनुरूप मजदूरी नहीं मिलती ओर जो काम वे करते हैं वे जोखिम भरे होते हैं। कोल्हू के बैल की तरह काम करते हुए उन्हें न तो खेलने और न ही स्कूल जाने का अवसर मिलता है। जो कार्य बच्चे करते हैं, प्रायः उनमें खास कौशल की आवश्यकता नहीं होती और भावी जीवन में व्यवसाय चुनने में भी मदद नहीं मिलती। इस प्रकार के काम का अनुभव उनके विकास में बाधा डालता है। कई छोटे पैमाने के और घरेलू उद्योगों में बच्चों को मजदूर रखा जाता है। सिवाकासी, तमिलनाडु में माचिस उत्पादन, मंदसौर, मध्यप्रदेश में पैंसिल उद्योग, जम्मू कश्मीर में कढ़ाई और अलीगढ़ में ताला उद्योग कुछ ऐसे ही उद्योग हैं, जहाँ बाल श्रम प्रचलन में है। उद्योगों में श्रमिक का काम करने के अलावा बच्चे घरेलू नौकर, क्लीनर या मैकेनिक का काम करते हैं। बहुत देर तक कमर तोड़ काम करने के बाद उन्हें मामूली मजदूरी मिलती है। आइए, अब हम अलीगढ़ के ताला उद्योग में काम कर रहे बच्चों की परिस्थितियों का जायजा लें।

ग. धर्म– धर्म दैनिक जीवन से संबंधित नियमों, नैतिक मूल्यों और आचार संहिता को निर्धारित करता है। धर्म लोगों को परस्पर संबंध बनाने के दिशानिर्देश प्रदान करता है। सभी धर्मों में बच्चों के कोमल, बहुमूल्य बचपन को सीखने का समय माना गया है। बच्चों के अनुभवों में धर्म की वजह से भिन्नता धर्मानुष्ठानों और पूजा के अलग तरीकों के कारण होती है।

अधिकांश धर्मो में जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के शुरू होने पर कुछ विशेष धार्मिक अनुष्ठान संपन्न किए जाते हैं। एक धर्म के अनुष्ठान दूसरे धर्म के अनुष्ठान से भिन्न होते हैं। हिन्दुओं के कुछ धार्मिक अनुष्ठान निम्नलिखित हैं-नामकरण संस्कार (बच्चे का नाम रखना), अन्नप्राशन संस्कार (बच्चे को पहला अल्प ठोसाहार का दिया जाना), मुंडन संस्कार (पहली बार सिर के बाल उतरवाना), विद्यारम्भ (वर्णमाला से परिचय)। ईसाइयों की कुछ धर्मविधियां हैं- बपतिस्मा व प्रथम कम्युनियन। मुसलमानों में वयस्कों के साथ नमाज पढ़ना, धार्मिक कर्तव्य समझा जाता है। परन्तु, समाज में परिवर्तन आने के कारण कुछ परिवारों में इन विधियों का इतना कड़ा पालन नहीं किया जाता। सभी धर्मों में तीर्थ स्थानों और पवित्र चीजों के प्रति आदर प्रारम्भ से ही सिखाया जाता है।

घ. पारिवारिक संरचना और परस्पर संबंध– परिवार के सदस्यों का बालिका के साथ व्यवहार, घर के सदस्यों की संख्या और बालिका के साथ उनके संबंध कैसे हैं-ये सभी बालिका के अनुभवों को प्रभावित करते हैं। जिसे परिवार में बालक या बालिका के माता-पिता के अतिरिक्त अन्य लोग भी होते हैं, वहां उसकी देखभाल कई लोगों द्वारा की जाती है। अगर माँ बहुत व्यस्त है और बालक-बालिका की देखभाल नहीं कर सकती अथवा उसके साथ खेल नहीं सकती तो दादी, चाची घर के बड़े बच्चे या अन्य सदस्य तो हैं ही। बालिका कई लोगों के साथ भावनात्मक संबंध जोड़ती है, दूसरी ओर एक छोटे परिवार में, जहाँ माता-पिता और उनके एक या दो बच्चे होते हैं, बालिका की देखभाल अभिभावक ही करते हैं और बालिका लगभग सारा समय माँ के साथ रहती है। जब माँ घर में अकेली होती है तो वह काम के समय बालिका को सुरक्षित स्थान पर खिलौने आदि खेलने के लिए दे देती है। इस दौरान बालिका अकेली होती है। अगर बालिका दो या तीन वर्ष की है तो माँ अपना काम करते हुए उसे खेल में संलग्न कर लेती है। उदाहरण के लिए सब्जियाँ काटते समय वह बालिका को एक-एक करके सब्जियाँ पकड़ाने को कहती है। ऐसा करने में बालिका को बहुत मजा आता है। यदि घर के कामों के लिए नौकर हों तो माँ बालिका के साथ अधिक समय व्यतीत कर सकती है।

कभी-कभी पिता परिवार से दूर किसी अन्य शहर में रहता है। ऐसी स्थिति में परिवार का सारा उत्तरादायित्व माँ पर आ जाता है। कभी-कभी परित्यक्ता या विधवा होने के कारण माँ अकेले ही बच्चों का पालन करती है। अतः जीवनयापन के साथ ही बच्चों की देखभाल का उत्तदायित्व भी उस पर होता है। ऐसी स्थिति में बालिका जल्द ही आत्मनिर्भर होना सीखती है। संभव है कि ऐसे में वह अपने पिता के न होने का अभाव महसूस करे और अपने को अन्य बच्चों से भिन्न भी महसूस करे। माता- पिता में से एक का अभाव भी बच्चे पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। परंतु यह प्रभाव किस सीमा तक होगा यह परिवार के अन्य लोगों की उपस्थिति पर निर्भर करता है।

(ड) परिस्थितिकी संदर्भ– परिस्थितिकी का तात्पर्य है वह भौतिक पर्यावरण, जिसमें व्यक्ति जीवन-यापन करता है। इसमें भौगोलिक स्थिति, वनस्पति, पशु जगत एवं प्राकृतिक संसाधन सम्मिलित हैं। परिस्थितिकी को इस प्रकार भी परिभाषित किया जा सकता है कि उपलब्ध सुविधाएँ सड़क, अस्पताल, स्कूल व बिजली आदि किस प्रकार की हैं, अर्थात् अच्छी हैं या बुरी। खाद्य सामग्री, कपड़े व व्यवसाय, कार्य विभाजन व पुरूष और स्त्री की जिम्मेदारियाँ परिस्थिति से निर्धारित होते हैं।

ग्रामीण शहरी और जन जातीय क्षेत्रों की परिस्थितियाँ भिन्न होती हैं। पहाड़ी मैदानी रेगिस्तानी और तटवर्ती क्षेत्र भी एक दूसरे से परिस्थिति के आधार पर भिन्न हैं। बच्चे वे कौशल सीखते हैं जो उन्हें परिस्थिति में जीवन-यापन के लिए मद्द करते हैं। पहले क्षेत्रों के गाँव में जहाँ भेड़ -पालन मुख्य व्यवसाय है बच्चे भेड़ों को चराने ले जाते है और ऊन बनाना भी सीखते हैं। इसी प्रकार तटवर्ती क्षेत्र के गाँव के बच्चे तैरना, नाव चलाना, मछली फाँसना, उसे साफ करना आदि सीखते हैं। रेगिस्तान में रहने वाले बच्चे ऊँट की देखभाल करना सीखते हैं और साथ ही साथ रेत के टीलों को पार करने में निपुण होते हैं।

इस इकाई में विभिन्न भौगोलिक स्थानों को ग्रामीण शहरी और जन जातीय क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है ऐसा इसलिए किया गया है क्योकि ग्रामीण समुदाय की कुछ खास विशेषताएँ होती है- चाहे वह तटवर्ती क्षेत्र में हो पहाड़ी क्षेत्र में हो या रेगिस्तानी क्षेत्र में. वे शहरी या जन जातियाँ इलाकों से भिन्न होते हैं। आगे की चर्चा इस विभाजन पर आधारित है।

शहर में रहने का अनुभव– जब आप शहर के बारे में सोचते हैं, तो पहले आपके ध्यान में क्या आता है? शहर में घनी आबादी और विविधता होती हैं। एक ओर अमीर लोग हैं, जो सब कुछ खरीदने की क्षमता रखते हैं। और दूसरी ओर वे गरीब हैं, जो जीवन निर्वाह के लिए परिश्रम करते हैं। भव्य तथा आलीशान घरों के समीप झुग्गी झोपड़ियाँ दिखाई देती हैं। उच्च आय वर्ग का एक पाँच वर्षीय बालक स्कूल जाता है, तो निम्न आय वर्ग का हमउम्र बालक नट का खेल दिखाकर अपनी जीविका अर्जित करता है।

शहरों में अस्पताल, होटल, स्कूल, सिनेमा, इलेक्ट्रॉनिक उपकरण, यातायात के विभिन्न साधन और अन्य कई सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। शहर में समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए उपयुक्त सामान और सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं जिनके पास साधन हैं सर्वोत्तम सामान खरीद सकते हैं। बालिका किस प्रकार रहती है। किन सुविधाओं का उपयोग कर सकती है वह दिन कैसे व्यतीत करती है-ये सब उसके सामाजिक वर्ग और परिवार के मानदंडों से निर्धारित होता है। उदाहरण के तौर पर झुग्गी-झोपड़ी में रहने की स्थिति कुछ इस प्रकार की होती है कि बालिका को न चाहते हुए भी पता रहता है कि पड़ोस में क्या हो रहा है। लोगों के बीच व्यावहारिक आदान-प्रदान बहुत रहता है और बालिका कई साथियों के साथ बड़ी होती है। दूसरी ओर उच्च आय वर्गो के लोग बड़े व निजी मकानों में रहते हुए अपनी इच्छा अनुसार पड़ोसी से संबंध बनाते हैं। ऐसी स्थिति में अगर बालिका इकलौती हो तो संभव है कि जब तक वह स्कूल नहीं जाती तब तक उसकी कोई सहेली न हो। पर इन सब भिन्नताओं के बाद भी शहर में रहने वाले सभी बच्चों के अनुभवों में जो एक समानता है वह है शहरी जीवनयापन की तेज रफ्तार।

गाँव में रहने का अनुभव– एक चीज़ जो गाँव को शहर से अलग करती है वो है आबादी। गांव की आबादी शहरों की अपेक्षा कम होती है। छोटे गाँवों में अधिकांश लोग एक दूसरे को जानते हैं। गाँवों में यातायात, अस्पताल, सिनेमा, स्कूल और पक्की सड़कों जैसी सुविधाएँ शहरों की अपेक्षा कम होती हैं। यहाँ के जीवन की गति भी धीमी होती है। परिवार और जाति समूह के बीच कड़ी सीमाएँ नहीं होती हैं। परिणामस्वरूप संभव है कि बालिका दिन का काफी समय अन्य घरों में बिताए और अनेक साथियों के बीच बड़ी हो।

गाँवों के अधिकतर बच्चे अपने माता-पिता का व्यवसाय अपनाते हैं। चाहे वह खेती-बाड़ी हो या कोई शिल्पकारी, दस्तकारी, कारीगरी जैसे मिट्टी के बर्तन या गलीचे बनाना। बच्चों का अधिकांश समय माता-पिता की काम में मदद करते हुए बीतता है और माता-पिता को काम में मदद किस हद तक चाहिए, यह परिवार की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। अगर परिवार गरीब है तो सभी सदस्यों को काम में हाथ बटाना पड़ता है। यदि परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी है तो बच्चों को स्कूल जाने का समय मिल जाता है और स्कूल की छुट्टियों में वह माता-पिता की मदद करते हैं। बदलते हुए मूल्यों के साथ गाँवों में शिक्षा को महत्वपूर्ण मान्यता मिलने लगी है, जो माता-पिता समर्थ हैं वे अपने बच्चों को स्कूल भेजते हैं और बेटियों को कम से कम प्राथमिक शिक्षा अवश्य देना चाहते हैं।

गाँवों में अस्पतालों और योग्य चिकित्सकों की कमी के कारण लोगों की कई बीमारियों का उचित उपचार नहीं हो पाता। अगर गाँव के आसपास कोई स्कूल न हो तो अधिकांश बच्चे औपचारिक शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। यातायात के अपर्याप्त साधनों के कारण बच्चे गाँव से बाहर नहीं जा पाते हैं। अतः उन्हें बाहरी दुनिया से परिचित होने का मौका नहीं मिलता।

जबकि एक शहरी बच्चे को अखबार, पत्रिकाओं, टेलीविजन और किताबों से विविध जानकारियाँ मिल जाती है। ग्रामीण बच्चों की तुलना में शहरी बच्चों की जानकारी का स्तर भिन्न होता है। तीन वर्षीय शहरी बालिका यह जानकार हैरान होती है कि भैंसें दूध देती हैं क्योकि उसके अनुसार दूध तो डिपो से बोतलों में आता है। इसके विपरीत गाँव की बालिका रोज ही भैसों को दुहते हुए देखा करती है। शहर में रहने वाली बालिका बड़े विश्वास से

हवाई जहाज, कम्प्यूटर और मोटरकारों के बारे में बातचीत कर सकती है। संभव है गाँव की बालिका को इस प्रकार की जानकारी न हो, परंतु वह केवल पत्ता देखकर पौधों को पहचान लेती है और यह जानती है कि पौधे कैसे उगाये जाते हैं।

निष्कर्ष

बचपन के बहुत से अनुभव सार्वभौम होते हैं फिर भी सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश की भिन्नता के कारण प्रत्येक बच्चे का बचपन भिन्न होता है। बचपन के अनुभवों को प्रभावित करने वाला एक कारक लिंग है। हमारे देश में लड़कों को लड़कियों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है और यही कारण है कि खाने-पीने में, कपड़ों में, शिक्षा में और माता-पिता के प्यार में लड़कियों के साथ भेद-भाव किया जाता है। निम्न सामाजिक वर्ग के बच्चों की बहुत सी मूलभूत आवश्यकताएँ और अभिलाषाएँ पूर्ण नहीं हो पाती हैं। आर्थिक कठिनाईयों के कारण बच्चों को छोटी उम्र में जल्द ही काम करना पड़ता है। कभी-कभी बच्चों को जोखिम भरे काम भी करने पड़ते हैं और वे स्कूल नहीं जा पाते। मध्यम और उच्च वर्ग के बच्चों को इस प्रकार की कमियों का सामना नहीं करना पड़ता है। जिस प्रकार के परिवार में वे रहते हैं और परिवार के सदस्यों का आपसी व्यवहार उसके विकास को प्रभावित करता है।

संदर्भ

1. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार एवं पत्र सूचना कार्यालय।
2. इन्टर नेट विकिपिडिया एवं बाह्य स्रोत।
3. समय आजकल।
4. समेकित बाल देखभाल सेवाओं का कार्यक्रम, योजना आयोग, भारत-सरकार।
5. फुलवारी, आई.सी.डी.एस. कार्यकम का त्रैमासिक न्यूजलेटर, दिसम्बर, 2005, राज्य परियोजना प्रबन्धन ईकाई, आई.सी. डी.एस.-3, उ०प्र०, बाल विकास परियोजना परिषद।
6. पोषण एवं स्वास्थ्य निर्देशिका (पोषण एवं स्वास्थ्य साप्ताहिक दिवस) 2002 बाल विकास सेवा एवं पुष्टहार निदेशालय उ०प्र० महिला एवं बाल विकास विभाग, उत्तर प्रदेश।
7. दुबे, श्यामाचरण (1955): परम्परा और परिवर्तन, भारती ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ०सं०- 103